दिगपालन की भुवपालन की,
लोकपालन की कि, मातु गईं च्वै।
कत भांड़ भये उठि आसन तें,

कहि केसव संभु सरासन को छवै।
अरु काहू चढ़ायो न काहू नवायो,
न काहू उठायो न आंगुरहू द्वै।
कछु स्वारथ भो न भयो परमारथ,
आये ह्वै बीर चले बनिता ह्वै।।34।।

शब्दार्थ—दिगपाल = दिशाओं को पालन करने वाले। भुवपाल = पृथ्वी का पालन करने वाले। लोकपाल = लोकों का पालन करने वाले। किन मातु गई च्वै = माता का गर्भ क्यों नहीं गिर गया। भांड = हँसी के पात्र। वनिता = नारी।

प्रसंग—जब किसी भी राजा से शिव-धनुष नहीं हिला तो राजा जनक का चारण विमति उनकी भर्त्सना करता हुआ कहता है।

व्याख्या—यहाँ पर एकत्रित दिगपाल, भूपाल और लोकपाल आदि सभी प्रकार के राजा हैं, लेकिन शिव-धनुष किसी से हिला तक नहीं। इनकी दुर्बलता को देखकर तो यही कहना पड़ता है कि इनकी माताओं के गर्भ क्यों नहीं गिर गये; अर्थात् अच्छा यही रहता कि ये लोग जन्म ही नहीं लेते। केशव कहते हैं कि राजाओं की भर्त्सना करता हुआ विमति कहता ही गया कि ये लोग अपने आसन से उठकर और शिव-धनुष को छूकर क्यों हँसी के पात्र बने? अर्थात् जब इन्हें अपनी शक्ति की सीमा का पता था तो इन्हें शिव-धनुष नहीं छूना चाहिए था। यह धनुष न तो किसी से चढ़ाया गया, न झुकाया गया और न दो अंगुल भी उठाया गया है। इस घटना से न तो राजाओं का स्वार्थ ही सिद्ध हुआ है और न परमार्थ ही; अर्थात् यदि ये शिव-धनुष को उठा लेते तो इन्हें सीता भी मिल जाती और संसार में इनकी वीरता का डंका भी बज जाता। ये बहादुर बनकर आए थे और नारी बनकर—अत्यन्त अपमानित होकर—लौट रहे हैं।

अलंकार—विषम (तृतीय)।